RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-04
Issue-01
January -2019

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com [UGC Listed Journal]

# हिन्दी उपन्यासों में दलित विमर्ष

पायलदीप

सहायक प्राध्यापक, हिंदी गुरू नानक कॉलेज फॉर गर्लज, श्री मुक्तसर साहिब पंजाब।

आजकल 'दलित' शब्द साहित्य में काफी चर्चा का विषय बना हुआ है। विषेषकर हिन्दी साहित्य में 'दलित' शब्द एक सैलाब की तरह उमड़ता जा रहा है। 'दलित' शब्द से अभिप्राय है दलन और दमन। जिस व्यक्ति को दबाया गया हो, जिसे उत्पीड़ित किया गया हो तथा जिसका शोषण किया गया हो वही दलित है। भारतीय समाज में जिसे अस्पृष्य माना गया वह व्यक्ति दलित है, दुर्गम पहाड़ों, वनों के बीच जीवनयापन करने के लिए बाध्य जनजातियां और आदिवासी जातियां सभी इसी दायरे में आती है। इन सभी वर्गो की स्त्रियां दलित है। बहुत कम श्रम मूल्य पर चौबीसों घंटे काम करने वाले श्रमिकख बंधुआ मजदूर दलित की श्रेणी में आते है। डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन दलित शब्द की व्याख्या करते हुए कहते है, ''दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है'' ।[1]

इसी प्रकार कंवल भारती मानते है कि, ''दलित वह है जिस पर अस्पृष्यता का नियम लागू किया गया हो। जिसे कठोर और गन्दे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया हो। जिसे षिक्षा ग्रहण करने की कोई स्वतन्त्रता न हो। जिस पर सछबूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की छाप लगा दी हो वही और वही दलित है और इसके अन्तर्गत वही जातियां आती है, जिन्हे अनुसूचित जातियां कहा जाता है'' ।[2]

'दलित' शब्द को जब साहित्य के साथ जोड़ दिया जाता है तो वह एक ऐसी साहित्यिक धारा की ओर संकेत करता है जो मानवीय सरोकारों और संवेदनओं का अभिव्यक्ति करता है। 'दलित' शब्द साहित्य के साथ जुड़कर पीड़ा के साहित्य के रुप में हमारे सामने आता है। तब यह साहित्य केवल पीड़ा का ही नहीं बल्कि मुक्ति–कामना का साहित्य बन जाता है। दलित साहित्य नये समाज के निर्माण का आह्वान भी करता है। इस साहित्य में भाग्य, भगवान, विकृत परम्परा, अन्धविष्वास के नकार के साथ–साथ वैज्ञानिक सोच और विवेकपरक, न्याय–परक व्यवस्था, समता, भाईचारा और आज़ादी का सपना भी है। ये दलितों में स्वाभिमान और आत्मविष्वास भर कर बराबरी के दर्जे पर खड़ा करने का प्रेरक साहित्य है।

दलित साहित्य समाज–सापेक्ष है। साहित्य की मूल संवेदना के साथ–साथ दलित साहित्य मनुष्य की स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व भावना को सर्वोपरि मानता है। मोहनदास नैमिषराय के अनुसार ''षोषक वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज मे समता, बन्धुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देष्य है।''[3]

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल को 'आदिकाल' के नाम से जाना जाता है। इस काल के साहित्य में वीर रस की प्रचुरता थी। आदिकाल के 'सिद्ध साहित्य' में अपने युगीन वैषम्य परिस्थितियों के प्रति विद्रोह की भावना व्यक्त होती है। इसमें दलितों को समान अधिकार प्रतिष्ठा और न्याय प्रदान करने का दृष्टिकोण है। इसी प्रकार भक्तिकाल में भी निर्गुण व सगुणवादी कवियों ने अपने भक्ति–आन्दोलन के द्वारा जातियों को समान अधिकार प्रदान करने का महान कार्य किया। रीतिकाल में भी समाज के धार्मिक नेता ब्राह्मण वर्ग अनेक प्रकार के तर्को के द्वारा साधारण जनता को भ्रम में डालकर रखते थे। अतः उस काल के कवि भी ऐसा मार्ग चाहते थे जिसमें अषिक्षित जनता को ब्राह्मण की कृपा पर निर्भर न रहना पड़े।

आधुनिक कालीन साहित्य में भी उपन्यास, कहानियां, नाटक, काव्य–कृतियां, निबन्ध आदि लिखे गए जो साहित्य में दलित–जीवन को एक महत्त्वपूर्ण उपन्यासकार हुए जिन्होंने अपने लेखन के माध्यम से समाज में दलित–वर्ग की दयनीय स्थिति को उजागर किया है। हिन्दी उपन्यास सहित्य में दलित वर्ग का चित्रण प्रेमचन्द से माना जाता है। प्रेमचन्द के उपन्यासों में 'रंगभूमि', 'कर्मभूमि', 'कायाकल्प', 'गोदान' आदि ऐसे उपन्यास है जो दलित–जीवन के चित्र प्रस्तुत करते हैं। 'रंगभूमि' का सूरदास दरिद्री चमार है। उसके लिए पेटभर खाना प्राप्त करना मुष्किल है। उसका यह अभाव उपन्यास में अभिव्यक्त होता है। दलितों को अपनी सेवा में लगाना वरिष्ठ लोग अपना अधिकार समझते है। यही उनके लिए अभिमान की बात होती है। ताहिर अली अपनी सेवा में लगे चमारों को देखकर गौरव महसूस करता है। 'कर्मभूमि' में भी दलित जीवन का सत्य प्रतिबिम्बित होता है। इस उपन्यास के माध्यम से प्रेमचन्द अमीरी और गरीबी की खाई को पाटना चाहते थे। 'कायाकल्प' में प्रेमचन्द ने बेगार–प्रथा के दुष्परिणामों को स्पष्ट किया है। जिसके षिकार दलित चमार बनते है। मेहतर, चमार, कहार जैसे दरिद्री लोगों को राजा विषाल सिंह के तिलक समारोह के वक्त दिन–रात खाली पेट काम करना पड़ता है। इस प्रकार प्रेमचन्द इस उपन्यास के द्वारा यह दिखाते है कि शक्ति सम्पन्न लोगों के सामने दलित वर्ग पषुओं से भी हीन और निम्न है। प्रेमचन्द के सुप्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान' में सिलिया नामक चमारिन की उपकथा दलित अबलाओं पर होने

RRIJM 2015, All Rights Reserved

वाले अत्याचार और उनकी कष्टमय जिन्दही की वास्तविकता को पाठकों के समक्ष रखती है। सिलिया एक चमारिन होकर भी ब्राह्मण से प्रेम कर बैठती है वह जानती है कि मातादीन के यहां एक मजदूरिन से ज्यादा उसकी कोई इज्जत नहीं।

सिलिया के जीवन का सत्यानाष मातादीन के द्वारा होता है। उसका मूल कारण अस्पृष्यता का भाव है, जिससे दलित निर्भय और सम्मानपूर्ण जिन्दगी नहीं बिता सकते।

पाण्डेयबेचन शर्मा 'उग्र' के द्वारा रचित उपन्यास 'बुधुआ की बेटी' भी ऐसा उपन्यास है जो दलितों के उद्धार को विचार में रखकर लिखा गया है। इसकी नायिका रधिया भंगिन है वह जवान और लावण्यवती है। उपन्यास की समस्या से यह स्पष्ट होता है कि समाज में दलितों का सवर्णो क भांति समान उत्थान होना चाहिए, अन्यथा राष्ट्रीय एकता का निर्माण नहीं हो सकता। इस उपन्यास का 'बुधुआ' लाचार बहिष्कृत और दरिद्री दलित समाज का साक्षी है। ''उग्र के इस उपन्यारस में अछूतों और दलितों के उद्धार की जो समस्याएं विवेचित होती है, वे भारतीय समाज की शाष्वत समस्याएं हैं। भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर भी उनमें राजनीतिक भाषणों और योजनाओं द्वारा जो भी सुधार कार्य किया गया हो, पर इस वर्ग की समस्याऐं उनके रहन–सहन का वातावरण और स्तर जैसे के तैसे है।[4]

उग्र के शराबी उपन्यास में भी दलित चित्र का विवरण मिलता है। समधी के द्वारा अपमानित होने से हीरा का पिता उत्तेजित होकर कहता है, ''चमार थे, तभी दुजाहे लड़के से अपनी लक्ष्मी को ब्याह दिया है। धन्य है आप जो ऐसे बाजपेई होकर भी हम चमारों का उद्धार करते फिरते है।.... अब गाली देने से क्या लाभ। कृप्या कीजिए हम गरीबों पर'' हीरा के पिता के इन शब्दों से उसकी गरीबी और आर्थिक दुर्दषा सामने आती है।

स्पृष्य, अस्पृष्य, ऊँच–नीच जैसे भेद–भाव का प्रसंग भगवतीचरण वर्मा के 'भूले बिसरे चित्र' नामक उपन्यास में मिलता है। श्री गेंदालाल जी दलित चमार हैं, जो एफ.ए. पास होने से चमड़े का कारखाना खोलना चाहते है। ज्ञान प्रकाष महात्मा गांधी के आधुनिक विचारों से प्रभावित होने से स्पृष्य–अस्पृष्य भेद नही मानते और सवर्णो की जाति–भेद नीति से जो नुकसान हुआ है, उसे प्रकाष में लाते हैं, ''नहीं गेंदालाल जी, आप अपने को अछूत न कहिए! हम सवर्णो ने मनुष्य का जो गला घोंटा है, अपने लोगों पर जो अत्याचार किया हैं, उसका दुष्परिणाम हमनें हजार वर्ष गुलामी में भोगा और आज तो हमारे देष का बच्चा–बच्चा अपमानित और अछूत है।''[5]

सियारामषरण गुप्त के 'अन्तिम आकांक्षा' उपन्यास में गांव की पाठषाला के अध्यापक सामजिक पाखण्ड और वर्ण–भेद के खिलाफ है। समाज में चमार को नीच हीन समझा जाता है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' द्वारा रचित उपन्यास 'निरुपमा' में भी समाज को नयी दृष्टि देने का काम किया गया है। उन्होने इस उपन्यास में जातीयवद जैसे असामाजिक तत्व पर आघात किया है। डी.लिट. डिग्री प्राप्त कुमार चमार का काम करते समय नहीं हिचकता है, लज्जित नहीं होता है। वह चमार नहीं है, तो भी उसका काम एक आदर्ष को सामने रखता है। उपन्यास में कुमार को जूते पालिष करने वाले चमार की भांति दिखाया गया है वह बादामी और काली पालिष की दो डिब्बियां और एक ब्रष लिए बैठा था। कई जोड़े पालिष करने को मिले। इस तरह कुमार का चमार का काम करना अपना अपमान है। ऐसी धारणा ऊँचे वर्णो वाले लोगों की है। इसी प्रकार निराला का 'कुल्ली भाट' नामक उपन्यास दलितों की समस्या को सामने रखता है। 'कुल्ली भाट' के दलितोद्धार के परिश्रमी कार्य को न देखते हुए लोग मुसलमानिन से होने वाले उनके सम्बन्ध को देखकर उन्हे बुरा आदमी समझते हैं परन्तु निराला ने इस सम्बन्ध का समर्थन किया है।

'कुल्ली' के द्वारा चलायी गयी पाठषाला में दलितों के बच्चे पढ़ते है परन्तु इस काम में गांव के लोगों से सहयोग नहीं मिलता है। कुल्ली की दलितों के प्रति सहानुभूति केवल पाठषाला तक ही सीमित नहीं है उनकी पीड़ा को दूर करने का सेवा भाव भी उनमें है।

उपेन्द्रनाथ 'अष्क' ने अपने उपन्यास 'गिरती दीवारें' में लाहौर के यथार्थ परिवेष को समाने रखा है ''लाहौर का चंगढ़ मुहल्ला जो अनारकली के पास बसा है, उसके गूजरों, चमारों, भंगियों, चंगड़ों के घंटों की गन्दगी, भिष्तियों के होने पर भी भिनभिनाता मुहल्ला चलचित्र में पर्दे की भांति आँखों के सामने आ जाता है।''[6] इसमें दलितों की गन्दगीपूर्ण बस्ती का चित्र साकार होता है। जगदीष चन्द्र के द्वारा रचित उपन्यास 'धरती धन न अपना' में लेखक ने अपने प्रत्यक्ष अनुभवों का चित्रण किया है। इस संदर्भ में स्वयं लेखक ने उपन्यास के प्रारम्भ में 'मेरी ओर से' में लिखा है– ''आर्थिक अभावों की चक्की में युगयुगान्तरों से पिस रहे हरिजन अब भी मध्यकालीन यातनाओं को भोग रहे हैं, जिस भूमि पर वे रहते है जिस ज़मीन को वे जोतते हैं, यहां तक कि जिन छप्परों में वे रहते हैं, कुछ भी उनका नहीं है।''[7]

इसी प्रकार जयप्रकाष कर्दम का उपन्यास 'छप्पर' परिवर्तनकामी उपन्यास है। यह उपन्यास एक मजदूर परिवार के युवक चंदन की षिक्षा के लिए जद्दोजहद की कहानी है। जिसमें उसकी माँ रमिया और पिता सुक्खा जो गांव के ब्राह्मण, बनियों और ठाकुरों द्वारा मिलकर उत्पीड़ित किया जाता है क्योंकि वे सदियों से चली आ रही परम्पराओं को तोड़कर अपने लड़के को शहर पढ़ने के लिए भेज रहा है। परन्तु समाज के ठेकेदार यह मानते है कि ऐसा करने से उनकी नाक कट जाएगी। लेकिन सुक्खा सभी दबावों के बावजूद भी झुकने को तैयार नहीं होता। सुक्खा को उसके खेतों से बेदखल करवा दिया जाता है। सुक्खा की गिरवी रखी झोंपड़ी पर साहूकार कब्जा कर लेता है। अन्ततः सुक्खा गांव छोड़कर

पास ही के एक कस्बे में रहकर मेहनत मजदूरी करता है और पैस चंदन को भेजता है। इस प्रकार आगे बढ़ने की लालसा में दलित वर्ग टूट कर बिखरना नहीं चाहता बल्कि अपना मनोबल बनाते हुए नकारात्मक परिस्थितियों से जूझता है।

निष्कर्ष रुप में हम हम सकते है कि दलित साहित्य अपने समय से लड़ते हुए आने वाले कल की बेहतर ज़िदगी के लिए आषावादी है। तमाम विपरीत परिस्थितियों चुनौतियों के संक्अ के बावजूद दलित साहित्य ने अपनी ऊर्जा और सम्भावनाएं क्षीण नहीं होने दी हैं। यह साहित्य दलित समाज को वैचारिक आधार पर संगठित करके सामन्ती, ब्राह्मणी शोषण, उत्पीड़न और जातिगत भेदभाव से मुक्ति के लिए संघर्ष की प्रेरणा देता है। उनमें सामाजिक सम्मान की भावना जागृत करके स्वाभाविकता से जीने की ललक पैदा करता है। उपन्यासकार प्रेमचन्द मानते थे कि स्वाधीनता ऐसा साधन है जिसके माध्यम से केवल विदेषियों के अत्याचार से ही नहीं बल्ति अपने देषवासियों की शोषण रीति से जनता पूर्ण मुक्त हो सकेगी। दीन, गरीब जनता की हालत में कुछ सुधार होगा और रुढ़िवादिता की लीक को छोड़कर समय के साथ हम कदम से कदम बढ़ा देंगे। उनकी यही क्रान्तिकारी भावना उनके उपन्यासों में मिलती है। प्रेमचन्दोत्तर उपन्यासकारों द्वारा भी दलितों की इसी दयनीय स्थिति का वर्णन किया गया। समाज में उन्हे अछूतों का दर्जा दिया जाता रहा है।

## सन्दर्भ संकेत


1. शरण कुमार लिंबाले, अनु. रमणिका गुप्ता, दलित साहित्य का सैन्दर्यषास्त्र, पृ. 13
2. वही, पृ. 14
3. वही, पृ. 22
4. बलवन्त साधु जाधव, प्रेमचन्द साहित्य में दलित चेतना, पृ. 63
5. भगवती चरण वर्मा, भूले बिसरे चित्र, पृ. 104
6. उपेन्द्रनाथ अष्क, गिरती दीवारें, पृ. 95
7. जगदीष चन्द्र माथुर, धरती धन न अपना (भूमिका)


RRIJM 2015, All Rights Reserved 